वेगनर का महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त
[CONTINENTAL DRIFT THEORY OF WEGNER]

अल्फ्रेड वेगनर का महाद्वीपीय प्रवाह (विस्थापन) सिद्धान्त
(Continental Drift Theory of Alfred Wegner)

पृथ्वी की प्रमुख भू-सन्नतियों में से एक, जिसकी संरचना सियालिक शैलों से हुई है और जो महासागरीय तली से ऊपर ऊठी हुई हैं, महाद्वीप कहलाता है। पृथ्वी पर महाद्वीपों एवं महासागरों की जो वर्तमान स्थिति दृष्टिगोचर हो रही है, ऐसी अवस्था पूर्व में नहीं थी। इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक ऐसे मत प्रतिपादित किए गए जिनसे ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में ये सभी एक स्थान पर एक पेंजिया के रूप में एकत्रित थे जो बाद में इस वर्तमान स्थिति में आए। महाद्वीपों की वर्तमान स्थिति एवं दूर-दूर स्थित महाद्वीपों के मध्य अनेक प्रकार से पाई जाने वाली समानताओं ने कुछ विद्वानों को विशेष रूप से आकर्षित किया। इसी कारण सर्वप्रथम **एण्टोनियो स्नाइडर** नामक फ्रांसीसी विद्वान ने सन् 1858 में महाद्वीपों के विस्थापित होने या प्रवाहित होने की सम्भावना प्रकट की। कुछ दशकों बाद अमेरिकी भूवैज्ञानिक **एफ. जी. टेलर** ने भी सन् 1908-10 के मध्य अपने शोध पत्रों में महाद्वीपीय प्रवाह की महत्वपूर्ण घटना को सही मानते हुए इसका पक्ष लिया किन्तु तब तक यह विचारधारा व्यवस्थित रूप से विकसित नहीं की जा सकी। सर्वप्रथम **अल्फ्रेड वेगनर** ने व्यवस्थित रूप से जर्मन भाषा में सन् 1912 में महाद्वीपीय प्रवाह (Continental Drift) की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की। इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ जाने से सन् 1924 में ही प्रकाशित हो सका। इस सिद्धान्त ने तत्कालीन सम्पूर्ण यूरोप एवं अमेरिका के विद्वान जगत में हलचल-सी मचा दी। यह सिद्धान्त तब से आज तक विद्वानों के लिए अनेक दृष्टिकोणों से निरन्तर चर्चा का विषय बना रहा है।

सिद्धान्त के विकास की पृष्ठभूमि—वेगनर वास्तव में जलवायु-विज्ञानवेत्ता थे। वह प्राचीनकाल से पृथ्वी पर होने वाले जलवायु परिवर्तन की सप्रमाण एवं कालक्रम के आधार पर व्याख्या करने में लगे रहे। उन्हें विषुवत्-रेखीय प्रदेश, आर्कटिक प्रदेश, दक्षिणी अफ्रीका, मध्य यूरोप जैसे विश्व के अनेक भागों में ऐसे प्राचीन जलवायु से सम्बन्धित प्रमाण मिले जो कि वर्तमान जलवायु से मेल नहीं खाते क्योंकि वहाँ वनस्पति एवं पशु जगत के जीवाश्म पूरी तरह विपरीत जलवायु से सम्बन्धित पाये गये। दक्षिणी अफ्रीका में महाद्वीपीय स्तर पर हिमानियों के प्रमाण, मध्य यूरोप से उत्तरी चीन तक की महान पट्टी में उष्ण कटिबन्धीय वनों के दबने से विकसित कोयले के प्रदेश इसके कुछ प्रमाण हैं। अधिक विस्तार में जाने पर उन्हें दूर-दराज के महाद्वीपों अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया के मध्य अनेक प्रकार की भू-दैज्ञानिक संरचना, विभिन्न जीवाश्म तथा आकृति की समानता जैसी समरूपता भी दिखाई दी। इन्हीं सब प्रमाणों के आधार पर उन्हें विश्वास हो गया कि (i) सभी महाद्वीप अति प्राचीन काल में आपस में जुड़े हुए थे एवं (ii) महाद्वीपों की या तो जलवायु बदली है अथवा वे अपनी मूल जलवायु वाले स्थानों से खिसककर या विस्थापित होकर वर्तमान स्थिति की ओर बहे। उसके अनुसार आज भी मोटे तौर पर दक्षिणी अमेरिका अफ्रीका की गिनी की खाड़ी के तट में एवं अण्टार्कटिक और ऑस्ट्रेलिया, द.-पू. अफ्रीका महाद्वीप के तट से निकट से सेट हो सकते हैं। इसी भाँति पूर्व काल में पास-पास में स्थित रहे इन महाद्वीपों की एकत्रित स्थिति का प्रमाण खण्डों की भू-वैज्ञानिक संरचना में समानता से भी मिलता है। दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी तट एवं गिनी एवं मध्य पश्चिमी अफ्रीका के तटों की समान संरचना से समझा जा सकता है।

पेंजिया महाद्वीप—वेगनर के अनुसार मध्य मेसोजोइक कल्प (Maseozoic Era) के प्रारम्भ तक सभी महाद्वीप एक विशाल स्थल खण्ड के रूप में एकत्रित थे। इस स्थल खण्ड का नाम वेगनर ने **पेंजिया** महाद्वीप रखा (चित्र 4.1 देखें)। इसके चारों ओर जो महासागर विस्तृत

था, उसका नाम **पेंथालसा** महासागर बताया। बाद में होम्स ने इस महासागर को प्रशान्त महासागर कहा। वेगनर के अनुसार इस महाद्वीप के उत्तरी क्षेत्र का वह भाग, जो कि आज उत्तरी अमेरिका का प्राचीन स्थल खण्ड है, **लोरेंशिया** कहलाया। इसी भाँति मध्य एशिया एवं यूरोप के प्राचीन स्थलखण्ड को **अंगारालैण्ड** कहा गया। शेष बचे सम्पूर्ण दक्षिण एशिया (अरब प्रायद्वीप से भारत तक), सम्पूर्ण अफ्रीका महाद्वीप, दक्षिणी अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया एवं अण्टार्कटिक के सभी प्राचीन स्थलखण्डों का सम्मिलित नाम गोण्डवानालैण्ड दिया गया क्योंकि ये सभी

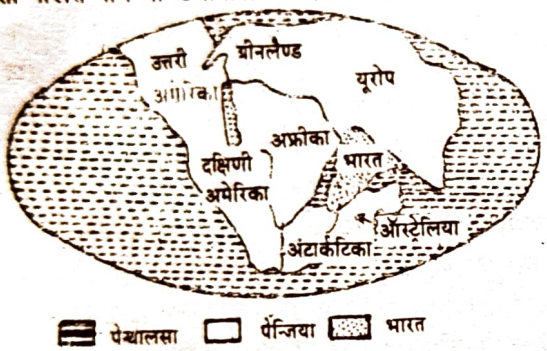

चित्र 4.1—पेंजिया महाद्वीप

तब मध्यवर्ती टेथिस सागर (भू-अभिनति) के दक्षिण में स्थित थे। इस महान पेंजिया महाद्वीप के उत्तरवर्ती भाग से (चित्र 4.1 देखें) अर्थात् लारेंशिया एवं अंगारालैण्ड से होकर **विषुवत् रेखा** गुजरती थी। उस समय के **दक्षिणी ध्रुव** की स्थिति वेगनर ने गोण्डवानालैण्ड के लगभग मध्य में दक्षिणी अफ्रीका में स्थित नेटाल के निकट बताई। वेगनर के अनुसार इस महान पेंजिया महाद्वीप के टूटने एवं उसके विविध स्थलखण्डों के विस्थापित होने एवं धीरे-धीरे किन्तु निरन्तर बहने से कई करोड़ वर्षों में वर्तमान के महाद्वीप, महासागरों एवं नवीन या अल्पाइन पर्वत माला की व्यवस्था का आज का स्वरूप विकसित हो सका।

महाद्वीपों का विस्थापन : (प्रवाह) दिशा व समय—पेंजिया महाद्वीप सम्मिलित रूप से मेसोजोइक कल्प के प्रारम्भ तक बना रहा। इसके पश्चात् विशिष्ट शक्तियों के प्रभाव से (पृथ्वी की आन्तरिक घटनाओं से) यह महाद्वीप विखण्डित होकर विस्थापित या प्रवाहित होने लगा। महाद्वीपों के विभिन्न खण्ड मुख्यत: दो दिशाओं में बहे। यूरेशिया एवं अफ्रीका महाद्वीप के प्राचीन स्थल-खण्ड मुख्यत: उत्तर दिशा की ओर प्रवाहित हुए जबकि दोनों अमेरिका के खण्ड पश्चिम उत्तर-पश्चिम की ओर प्रवाहित हुए। उत्तर की ओर बहने से भारत के दक्षिण व अफ्रीका के पूर्व में हिन्द महासागर एवं यूरोप व अफ्रीका तथा दोनों अमेरिका के मध्य अटलाण्टिक महासागर के लिए बेसिनों का विकास हुआ। यह घटना निरन्तर मेसोजोइक कल्प के तीनों युग (ट्रियासिक, जुरैसिक एवं क्रिटेशियस) तक अधिक स्पष्ट रूप से गतिशील रही। क्रिटेशियस युग में वेगनर के अनुसार चन्द्रमा का स्थल खण्ड प्रशान्त महासागर से अलग होकर उपग्रह बना। इसी समय टेथिस सागर नामक भूसन्नति से एवं प्रवाह की दिशा के अनुसार महाद्वीप की सीमा एवं अपतटीय सागर में मोड़ों का निरन्तर विकास होने से अल्पाइन क्रम के पर्वतों का विकास हुआ। बड़े पैमाने पर ज्वालामुखी क्रिया भी इसी काल से सम्बन्धित है। इस प्रकार पृथ्वी के इतिहास में यह काल विशेष उथल-पुथल, गतियों एवं परिवर्तन का माना जा सकता है।

महाद्वीपों के प्रवाह की दिशा मार्ग के बारे में वेगनर का कहना है कि (i) विषुवत् रेखा या उत्तर की ओर महाद्वीपीय विस्थापन का कारण गुरुत्वाकर्षण बल एवं प्लवशीलता का बल (Force of Buoyancy) रहा जबकि (ii) महाद्वीपों के पश्चिम की ओर बहने का कारण उसके अनुसार सूर्य एवं चन्द्रमा की सम्मिलित ज्वारीय शक्ति है।

महाद्वीपीय प्रवाह या विस्थापन को अधिक स्पष्ट करते हुए वेगनर ने महाद्वीपीय खण्डों को सियाल नामक अपेक्षाकृत हल्के पदार्थों का माना जो कि अपने नीचे की सीमा नामक भारी पदार्थों में कुछ दूरी तक डूबकर तैरता रहा है। इसी कारण गुरुत्वाकर्षण शक्ति, ज्वारीय शक्ति आदि के प्रभाव से महाद्वीप धीरे-धीरे कुछ करोड़ वर्षों तक प्रवाहित होते रहे। वर्तमान में भी कई विद्वान विस्थापन प्रक्रिया को अब भी क्रियाशील मानते हैं।

उपर्युक्त कारणों से महाद्वीपों के विस्थापित होने से ही शेष बचा पेंथालसा महासागर ही प्रशान्त महासागर बना। इसी भाँति भूमध्य रेखा व ध्रुवों की स्थिति में भी महाद्वीपों के सन्दर्भ में निरन्तर परिवर्तन आता गया। विषुवत् रेखा की सबसे उत्तर की स्थिति वेगनर के अनुसार सिलुरियन युग के उत्तरार्द्ध में नॉर्वे के मध्य या उत्तरी भाग में एवं कार्बोनिफेरस युग के अन्त तक यह मध्य यूरोप से और टर्शियरी युग के प्रारम्भ में यह भूमध्य सागर एवं हिमालय के निकट के प्रदेशों से होकर गुजरती थी। इसी भाँति **उत्तरी ध्रुव** सिलुरियन युग में 14° उत्तरी अक्षांश एवं 124° पश्चिमी देशान्तर तथा **दक्षिणी ध्रुव** मैडागास्कर के उत्तर-पूर्व में स्थित था। कार्बोनिफेरस युग के अन्त तक उत्तरी ध्रुव 16° उत्तरी अक्षांश एवं 147° पश्चिमी देशान्तर पर तथा दक्षिणी ध्रुव नेटाल (दक्षिणी अफ्रीका) के निकट स्थित था। **टर्शियरी कल्प** के प्रारम्भ में उत्तरी ध्रुव 51° उत्तरी अक्षांश एवं 153° पश्चिमी

था, उसका नाम **पेंथालसा** महासागर बताया। बाद में होम्स ने इस महासागर को प्रशान्त महासागर कहा। वेगनर के अनुसार इस महाद्वीप के उत्तरी क्षेत्र का वह भाग, जो कि आज उत्तरी अमेरिका का प्राचीन स्थल खण्ड है, **लोरेंशिया** कहलाया। इसी भाँति मध्य एशिया एवं यूरोप के प्राचीन स्थलखण्ड को **अंगारालैण्ड** कहा गया। शेष बचे सम्पूर्ण दक्षिण एशिया (अरब प्रायद्वीप से भारत तक), सम्पूर्ण अफ्रीका महाद्वीप, दक्षिणी अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया एवं अण्टार्कटिक के सभी प्राचीन स्थलखण्डों का सम्मिलित नाम गोण्डवानालैण्ड दिया गया क्योंकि ये सभी

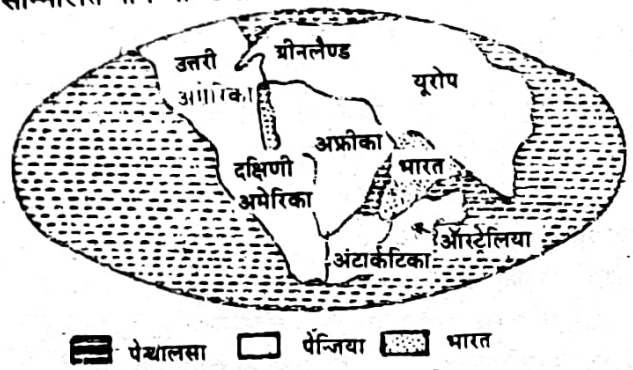

चित्र 4.1—पेंजिया महाद्वीप

तब मध्यवर्ती टेथिस सागर (भू-अभिनति) के दक्षिण में स्थित थे। इस महान पेंजिया महाद्वीप के उत्तरवर्ती भाग से (चित्र 4.1 देखें) अर्थात् लारेंशिया एवं अंगारालैण्ड से होकर **विषुवत् रेखा** गुजरती थी। उस समय के **दक्षिणी ध्रुव** की स्थिति वेगनर ने गोण्डवानालैण्ड के लगभग मध्य में दक्षिणी अफ्रीका में स्थित नेटाल के निकट बताई। वेगनर के अनुसार इस महान पेंजिया महाद्वीप के टूटने एवं उसके विविध स्थलखण्डों के विस्थापित होने एवं धीरे-धीरे किन्तु निरन्तर बहने से कई करोड़ वर्षों में वर्तमान के महाद्वीप, महासागरों एवं नवीन या अल्पाइन पर्वत माला की व्यवस्था का आज का स्वरूप विकसित हो सका।

महाद्वीपों का विस्थापन : (प्रवाह) दिशा व समय—पेंजिया महाद्वीप सम्मिलित रूप से मेसोजोइक कल्प के प्रारम्भ तक बना रहा। इसके पश्चात् विशिष्ट शक्तियों के प्रभाव से (पृथ्वी की आन्तरिक घटनाओं से) यह महाद्वीप विखण्डित होकर विस्थापित या प्रवाहित होने लगा। महाद्वीपों के विभिन्न खण्ड मुख्यत: दो दिशाओं में बहे। यूरेशिया एवं अफ्रीका महाद्वीप के प्राचीन स्थल-खण्ड मुख्यत: उत्तर दिशा की ओर प्रवाहित हुए जबकि दोनों अमेरिका के खण्ड पश्चिम उत्तर-पश्चिम की ओर प्रवाहित हुए। उत्तर की ओर बहने से भारत के दक्षिण व अफ्रीका के पूर्व में हिन्द महासागर एवं यूरोप व अफ्रीका तथा दोनों अमेरिका के मध्य अटलाण्टिक महासागर के लिए बेसिनों का विकास हुआ। यह घटना निरन्तर मेसोजोइक कल्प के तीनों युग (ट्रियासिक, जुरैसिक एवं क्रिटेशियस) तक अधिक स्पष्ट रूप से गतिशील रही। क्रिटेशियस युग में वेगनर के अनुसार चन्द्रमा का स्थल खण्ड प्रशान्त महासागर से अलग होकर उपग्रह बना। इसी समय टेथिस सागर नामक भूसन्नति से एवं प्रवाह की दिशा के अनुसार महाद्वीप की सीमा एवं अपतटीय सागर में मोड़ों का निरन्तर विकास होने से अल्पाइन क्रम के पर्वतों का विकास हुआ। बड़े पैमाने पर ज्वालामुखी क्रिया भी इसी काल से सम्बन्धित है। इस प्रकार पृथ्वी के इतिहास में यह काल विशेष उथल-पुथल, गतियों एवं परिवर्तन का माना जा सकता है।

महाद्वीपों के प्रवाह की दिशा मार्ग के बारे में वेगनर का कहना है कि (i) विषुवत् रेखा या उत्तर की ओर महाद्वीपीय विस्थापन का कारण गुरुत्वाकर्षण बल एवं प्लवशीलता का बल (Force of Buoyancy) रहा जबकि (ii) महाद्वीपों के पश्चिम की ओर बहने का कारण उसके अनुसार सूर्य एवं चन्द्रमा की सम्मिलित ज्वारीय शक्ति है।

महाद्वीपीय प्रवाह या विस्थापन को अधिक स्पष्ट करते हुए वेगनर ने महाद्वीपीय खण्डों को सियाल नामक अपेक्षाकृत हल्के पदार्थों का माना जो कि अपने नीचे की सीमा नामक भारी पदार्थों में कुछ दूरी तक डूबकर तैरता रहा है। इसी कारण गुरुत्वाकर्षण शक्ति, ज्वारीय शक्ति आदि के प्रभाव से महाद्वीप धीरे-धीरे कुछ करोड़ वर्षों तक प्रवाहित होते रहे। वर्तमान में भी कई विद्वान विस्थापन प्रक्रिया को अब भी क्रियाशील मानते हैं।

उपर्युक्त कारणों से महाद्वीपों के विस्थापित होने से ही शेष बचा पेंथालसा महासागर ही प्रशान्त महासागर बना। इसी भाँति भूमध्य रेखा व ध्रुवों की स्थिति में भी महाद्वीपों के सन्दर्भ में निरन्तर परिवर्तन आता गया। विषुवत् रेखा की सबसे उत्तर की स्थिति वेगनर के अनुसार सिलुरियन युग के उत्तरार्द्ध में नॉर्वे के मध्य या उत्तरी भाग में एवं कार्बोनिफेरस युग के अन्त तक यह मध्य यूरोप से और टर्शियरी युग के प्रारम्भ में यह भूमध्य सागर एवं हिमालय के निकट के प्रदेशों से होकर गुजरती थी। इसी भाँति **उत्तरी ध्रुव** सिलुरियन युग में 14° उत्तरी अक्षांश एवं 124° पश्चिमी देशान्तर तथा **दक्षिणी ध्रुव** मैडागास्कर के उत्तर-पूर्व में स्थित था। कार्बोनिफेरस युग के अन्त तक उत्तरी ध्रुव 16° उत्तरी अक्षांश एवं 147° पश्चिमी देशान्तर पर तथा दक्षिणी ध्रुव नेटाल (दक्षिणी अफ्रीका) के निकट स्थित था। **टर्शियरी कल्प** के प्रारम्भ में उत्तरी ध्रुव 51° उत्तरी अक्षांश एवं 153° पश्चिमी

देशान्तर पर तथा दक्षिणी ध्रुव अफ्रीका से सुदूर दक्षिणी सागर में 52° दक्षिणी अक्षांश पर स्थित था।

पर्वत निर्माण एवं द्वीपीय चाप का विकास—वेगनर के अनुसार जब अमेरिका महाद्वीप पश्चिम की ओर प्रवाहित हुआ तब सम्पूर्ण पश्चिमी तट के सहारे-सहारे प्रवाह की दिशा से पर्वतों का विकास हुआ क्योंकि सियाल खण्ड सीमा क्षेत्र से घर्षण करते हुए बहे, इसी से मोड़ विकसित हुए। यह क्रम दीर्घकाल तक चलता रहा। इसी कारण उत्तरी अमेरिका के पश्चिमी भाग के

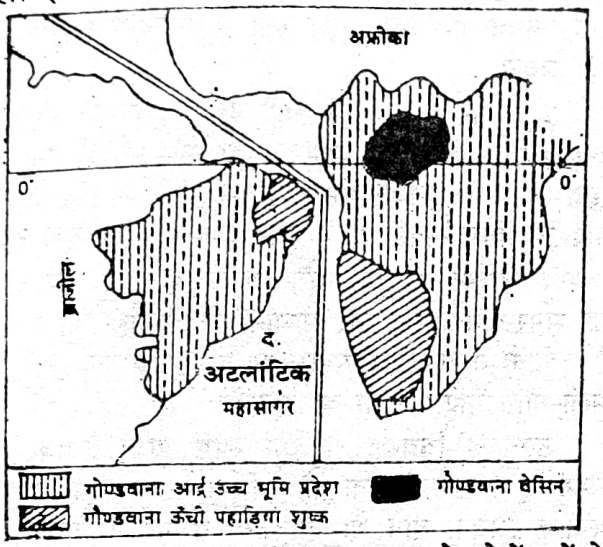

चित्र 4.2—मध्यवर्ती अटलांटिक महासागर के दोनों तटों के निकट के भू-खण्डों में भू-वैज्ञानिक संरचना की समानता

मोड़ अधिक जटिल हैं, वहाँ ज्वालामुखी क्रियाएँ भी बड़े पैमाने पर हुईं। एशिया के उत्तर एवं उत्तर-पूर्व की ओर प्रवाहित होने से उनमें जब गति कम होने लगी तब पूर्वी एशिया के तट पर जहाँ कम ऊँचाई के मोड़ बने, वहीं प्रशान्त महासागर गहरा होने से तट का कुछ भाग अपनति (Syncline) के रूप में अपतट में डूब गया और शेष उठे हुए मोड़ पूर्वी तटीय द्वीपीय चाप के रूप में बचे रहे। इसी कारण बेरिंग सागर से पूर्वी द्वीप समूह तक चापाकार द्वीपों की शृंखला मिलती है। अटलांटिक महासागर में अमेरिका के पश्चिम की ओर प्रवाह के समय कुछ भाग पीछे शेष रह गए, इसी से पश्चिमी द्वीप समूह का विकास हुआ।

सिद्धान्त के पक्ष में प्रमाण—वेगनर ने इस सिद्धान्त के पक्ष में एक वकील की भाँति विभिन्न प्रमाण दिये हैं, फिर भी वे आज तक प्रमाणित नहीं माने जाते हैं।

1. वर्तमान के अटलांटिक महासागर के दोनों तटों पर स्थित हरसीनियन तथा कैलिडोनियन पर्वत क्रमों में आज भी कई प्रकार से भू-वैज्ञानिक समानता है। इसी भाँति दोनों तटों के स्थलखण्डों में अनेक प्रकार से भू-वैज्ञानिक संरचना एवं खनिजों की प्राप्ति में समानता पाई जाती है (चित्र 4.2 देखें)।

2. वेगनर ने यह बात भी स्पष्ट की कि अटलांटिक महासागर के दोनों किनारे (तट) भौगोलिक आधार पर भी एक-समान हैं। उत्तरी अमेरिका का पूर्वी तट पश्चिमी यूरोप के तट से भली-भाँति मिलाया जा सकता है। इसी प्रकार दक्षिणी अमेरिका के ब्राजील का उठा हुआ भाग अफ्रीका की गिनी की खाड़ी से सटाया जा सकता है। यह फटे हुए कागज (Jig Saw fit) की तरह ठीक बैठता है।

3. अटलांटिक महासागर के दोनों तटों पर पायी जाने वाली वनस्पति तथा जीवावशेष (फॉसिल्स) आदि में आज भी समानता पायी जाती है।

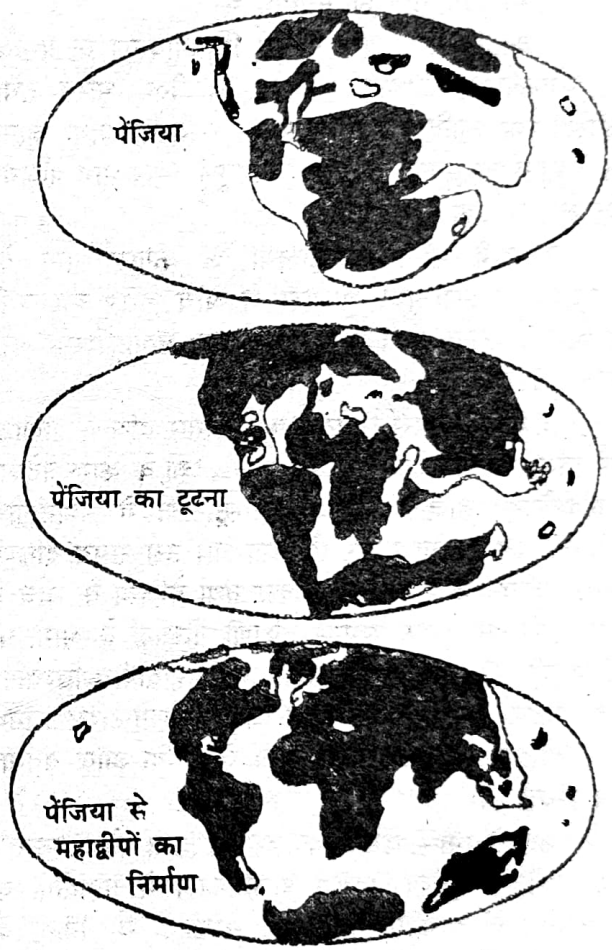

चित्र 4.3—पैंजिया से महाद्वीपों तथा महासागरों का निर्माण

4. सन् 1927 में डुटोइट (A. L. Dutoit) ने दक्षिणी अमेरिका के पूर्वी तट तथा अफ्रीका के पश्चिमी तट का संरचनात्मक अध्ययन कर यह वास्तविकता प्रकट की कि दोनों तटों की चट्टानें एक-सी हैं। दोनों ही तटों के निकट, हीरे की खानें समान संरचना के क्षेत्रों में पाई जाती हैं।

5. यूरोप में लेमिंग नामक कुछ ऐसे चूहे जैसे जीव पाये जाते हैं जो कि ऋतुओं के अनुसार पश्चिम की ओर जाते हैं। पश्चिम में जाकर अटलांटिक महासागर में अपना जीवन अर्पण कर देते हैं। सम्भवत: इनके पूर्वज पश्चिम की ओर यात्रा करते थे, तब उत्तरी अमेरिका तथा यूरोप परस्पर मिले हुए थे।

6. भू-वैज्ञानिकों ने प्रमाणों के आधार पर यह बतलाया कि ग्रीनलैण्ड एक वर्ष में 32 सेमी. पश्चिम की ओर खिसक जाता है लेकिन सन् 1930 के बाद ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हुआ है। विभिन्न महाद्वीपों के संरचनात्मक परीक्षण, चट्टान, जीवाश्म एवं पर्वत आदि अध्ययनों से यह प्रमाणित होता है कि प्रारम्भिक अवस्था में सभी महाद्वीप एक ही भूखण्ड थे।

7. कार्बोनिफेरस युग में हुए हिमानीकरण के प्रभाव से फॉकलैण्ड, दक्षिणी अफ्रीका, ब्राजील, भारत तथा ऑस्ट्रेलिया आदि देशों में समान व्यवस्था पाया जाना तभी माना जा सकता है, जबकि सम्पूर्ण स्थल भाग पेंजिया के रूप में एक साथ जुड़े रहे हों।

8. इसी भाँति ऑस्ट्रेलिया के कंगारू पशु के जीवाश्म दक्षिणी-पूर्वी ब्राजील में पाये गये। यह तभी सम्भव है जबकि दोनों महाद्वीपीय खण्ड कभी परस्पर जुड़े रहे होंगे।

9. कार्बोनिफेरस हिमयुग का विस्तार दक्षिणी गोलार्द्ध से विशेष सम्बन्धित रहा। दक्षिणी अफ्रीका के कारू प्रदेश, फॉकलैण्ड, ब्राजील, भारत, ऑस्ट्रेलिया में महाद्वीपीय हिमानी का विशेष प्रसार हो गया था। उस समय दक्षिणी ध्रुव वर्तमान के डरबन के निकट तथा पेंजिया के बीच में था। इसी कारण इस सम्पूर्ण दक्षिणी गोलार्द्ध के भागों पर हिम की चादर बिछ गयी होगी। यह महाद्वीपीय विस्थापन के प्रारम्भ में ही हुआ होगा तभी ग्लोसोप्टरिस नामक वनस्पति का विसरण हुआ होगा जैसा कि आज वर्तमान में स्थित है।

आलोचना—वेगनर का इस सिद्धान्त को विस्तार से समझाने का मुख्य उद्देश्य प्राचीनकाल में महाद्वीपों की जलवायु में आये परिवर्तनों को समझाना रहा किन्तु वह कई प्रकार के प्रमाणों एवं समस्याओं के अनेक तथ्यों में अधिक गहराई से फँस गए। कई समस्याएँ व बातें नये रूप में सामने आयीं जिनका कि वह सही-सही या प्रामाणिक उत्तर या समाधान नहीं खोज पाये। इसी कारण कई बातों को नये रूप में बाद में विद्वानों ने समझाया। वेगनर के सिद्धान्त की आलोचना अग्र रूप में की गयी है—

1. वेगनर ने बताया कि सीमा पर सियाल बिना किसी रुकावट के तैर रहा था तथा बाद में पुन: बदलकर बताया कि सीमा में बहने से सियाल (Sial) पर रुकावट पैदा हुई। अत: वह सियाल द्वारा सीमा (Sima) में तैरने की बात नहीं समझा सके।

2. वेगनर ने जो महाद्वीपीय प्रवाह 'बल' का प्रयोग किया है, वह अस्वाभाविक एवं गलत है क्योंकि चन्द्रमा व सूर्य महाद्वीप को पश्चिम की दिशा में तभी खिसका सकते हैं जबकि वर्तमान बल ज्वारीय बल से 90 अरब गुना अधिक हो। अत: ऐसे बल से महाद्वीप खिसक ही नहीं सकते।

3. वेगनर ने यह सही-सही नहीं बताया कि महाद्वीप कब व किस दिशा में प्रवाहित हुए और न इस बात को स्पष्ट किया कि कार्बोनिफेरस युग से पहले समस्त पेंजिया महाद्वीप किस स्थिति में निरन्तर एक महाद्वीप बना रहा।

4. वेगनर की यह बात हर जगह लागू नहीं होती कि समस्त महाद्वीपों को आसानी से मिलाया जा सकता है क्योंकि अटलांटिक महासागर के ही सम्पूर्ण तटों को भली-भाँति नहीं सटाया जा सकता।

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि इस सिद्धान्त में काल्पनिकता को अधिक महत्व दिया गया है क्योंकि जितनी बातें या शक्तियाँ वेगनर ने बतायीं, वे सभी आलोचना की प्रतीक हैं। इसीलिए इस सिद्धान्त को वर्तमान युग में सैद्धान्तिक रूप न देकर काल्पनिक रूप में ही अधिक वरीयता दी जाती है। फिर भी महाद्वीपीय विस्थापन की घटना से इन्कार नहीं किया जा सकता।

महाद्वीपीय विस्थापन के समर्थन के नवीन प्रमाण—अनेक विद्वानों ने महाद्वीपीय विस्थापन पर नए सिरे से खोज करके नवीन आधार व शक्तियों की खोज की, ये हैं—

(i) पौराणिक शैलों का जीवाश्मी चुम्बकत्व।

(ii) महासागरीय नितलों की प्रकृति एवं व्यवहार।

(iii) प्लेट विवर्तनिकी के प्रमाण।

(i) प्रारम्भ में जब पृथ्वी तरल अवस्था में थी तभी आग्नेय शैलों का निर्माण हुआ। उस समय शैलों में लौहयुक्त ऑक्साइड के कण अर्थात् शैलों के निर्माण के समय चुम्बकीय कण उत्तर दिशा की ओर ही आकर्षित हुए होंगे। अत: इन पौराणिक शैलों के जीवाश्मी चुम्बकत्व की दिशा से उस काल का अक्षांश व देशान्तर भी ज्ञात किया जा सकता है। अत: इसी आधार पर यह सिद्ध किया गया कि जीवाश्मी चुम्बकत्व की दिशा विभिन्न समयों पर अलग-अलग ही रही। उदाहरण के लिए, चुम्बकीय उत्तरी ध्रुव किसी समय हवाई द्वीप के

निकट स्थित था लेकिन बाद में जापान के कमचटका के पास होकर उत्तरी साइबेरिया की ओर चला गया है।

लन्दन में स्थित इम्पीरियल कॉलेज के भौतिकी विज्ञान के **प्रो. ब्लेकिट** ने पौराणिक शैलों का अध्ययन कर यह सिद्ध किया कि आज से लगभग 7 करोड़ वर्ष पूर्व भारत भूमध्य रेखा के दक्षिण में था और इंग्लैण्ड भूमध्य रेखा के पास उत्तर में था।

(ii) दूसरी बात यह थी कि विद्वानों ने महासागरीय नितलों की रचना का अध्ययन कर कुछ नवीन तथ्य सामने रखे हैं—

1. महासागरीय नितलों के तलछटों का परीक्षण करने पर यह सिद्ध होता है कि ये अधिक पुराने नहीं हैं क्योंकि क्रिटेशियस युग से पहले कहीं भी ऐसे निक्षेप नहीं मिले थे।

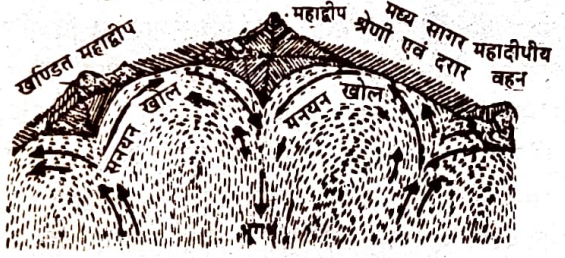

चित्र 1.4—अध:स्तरीय संवाहनी धाराओं की कोशिकाएँ

2. अधिकांशत: महासागरीय नितलों में क्रमबद्ध पर्वत श्रेणियाँ फैली हुई हैं। अटलांटिक महासागर, हिन्द महासागर और प्रशान्त महासागर के पूर्व में जो पर्वत श्रेणियाँ स्थित हैं, इन सभी पर्वत श्रेणियों के मध्य में विदर (Cracks) अवश्य पायी जाती हैं।

3. ग्रीनलैण्ड तथा कैलीफोर्निया के पश्चिम में विस्थापन के प्रमाण सिद्ध हुए हैं।

4. हिन्द महासागर की तली में स्पष्टत: विस्थापन से बनी धारियाँ सैकड़ों किलोमीटर तक आज भी पाई जाती हैं।

जनवरी, 1962 में नेचर (Nature) नामक अमेरिकी पत्रिका में अमेरिकी विद्वान **हेस** (H. H. Hess) तथा **डीज** (Dr. R. S. Dietz) द्वारा महाद्वीपीय विस्थापन सिद्धान्त का समर्थन करते हुए नए विचार प्रस्तुत किये थे।[1] होम्स महोदय ने अध:स्तर से उत्पन्न होने वाली संवाहनी धाराओं (Convection Currents) के संप्रेषण का समर्थन किया। इसके विचारानुसार संवाहनी धाराओं के प्रभाव का क्षेत्र महासागरीय नितलों तक स्थित है। अत: संवाहनी धाराओं के द्वारा एक के बाद एक नवीन परतों का आगमन निरन्तर होता रहता है। इसलिए अधिक पुराने तलछट महासागरों के नितलों में नहीं मिलते हैं।

डीज के अनुसार अध:स्तर में गतिशील संवाहनीय धाराएँ विभिन्न कोशिकाओं (Cells) में अलग-अलग प्रभावी रहती हैं, जैसे अटलांटिक महासागर की श्रेणी नीचे से ऊपर को चलने वाली धाराओं से बनी है। इस प्रकार की धाराओं से ही दरार उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसे दरारों से जो मैग्मा निकलकर फैलता है उससे महासागरीय तली एवं श्रेणियों का स्थानीय विस्तार भी हो सकता है। संवाहनिक धाराओं की कोशिकाओं में प्रभावी रहने के हेस व डीज ने कैलीफोर्निया, हिन्द महासागर आदि के विशेष उदाहरण भी प्रमाणों सहित दिये।